# पाँव तले की दूब

संजीव

# पाँव तले की दूब

## संजीव

## संजीव

**जन्म** : 6 जुलाई, 1947 को बांगर कलाँ गाँव सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

**सनदों में नाम** : राम सजीवन प्रसाद।

**शिक्षा** : बी.एस.सी., ए.आई.सी (भारत), शिक्षा-दीक्षा, नौकरी पश्चिम बंगाल में।

**कृतियाँ** : लगभग सवा सौ कहानियाँ, उपन्यास और विविध लेखन।

**प्रकाशित रचनाएँ-** कथा संग्रह : तीस साल का सफरनामा, आप यहाँ हैं, भूमिका और अन्य कहानियाँ, प्रेतमुक्ति दुनिया की सबसे हसीन औरत, ब्लैक होल, खोज, गति का पहला सिद्धान्त, गुफा का आदमी, दस कहानियां, गली के मोड़ पर सूना-सा कोई दरवाजा, संजीव की कथायात्रा-पड़ाव-1,2,3;

**उपन्यास** : किशनगढ़ के अहेरी, सर्कस, सावधान! नीचे आग है, धार, पाँव तले की दूब, जगंल जहाँ शरू होता है, सूत्रधार, रानी की सराय, आकाश चम्पा, रह गई दिशाएँ इसी पार।

**बाल उपन्यास** : रानी की सराय, डायन।

**कृतियों पर फिल्में** : सावधान! नीचे आग है उपन्यास पर काला हीरा नामक टेलीफिल्म, 'प्रकाश झा प्रोडक्शन' द्वारा हिमरेखा कहानी पर फिल्म निर्माणाधीन; श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित फिल्म वेल डन अब्बा कहानी फुलवा का पुल पर आधारित।

**सम्मान** : प्रथम पुरस्कार : सारिका : सर्वभाषा कथा प्रतियोगिता, 1980; प्रथम कथाक्रम सम्मान लखनऊ, 1997, इंदु शर्मा स्मृति अंतर्राष्ट्रीय सम्मान, 2001; भिखारी ठाकुर लोक सम्मान, 2005; 'पहल' सम्मान, 2006; सुधा स्मृति सम्मान, 2008।

सन् 1965 से 2003 तक इंडियन आयरन एंड स्टील कं. कुल्टी (पं.ब.) में रसायनज्ञ।

**सम्प्रति** : कार्यकारी सम्पादक, हंस, मासिक।

# पाँव तले की दूब

दूर होती ट्रेन की लय के साथ आख़िरी बोगी के पीछे जड़ा सुर्ख अंगारा भी मद्धम पड़ते-पड़ते बुझ गया तो मैंने अपने-आपको उस निपट उजाड़ स्टेशन पर अकेला पाया। कुल मिलाकर वहाँ एक चाय-पान की दुकान ही थी,जहाँ टिकट भी मिलते थे और चाय—वाय भी। ट्रेन के सरकते ही उसने भी अपनी कुप्पी बुझाकर लम्बी तान ली थी।

अँधेरे में सारा आलम डूबा हुआ है। आकाश में एक भी तारा नहीं। स्टेशन की नाम-पट्टिका पर टॉर्च जलाकर मैं इत्मीनान कर लेना चाहता हूँ कि कहीं मैं गलत स्टेशन पर तो नहीं उतर गया? पंच पहाड़! नाम से तो यही होना चाहिए।

टॉर्च के बुझते ही अँधेरे की काई फिर जुड़ जाती है। मैं चुपचाप घूरने लगता हूँ अँधेरे को। धीरे-धीरे आँखें सध रही हैं। थोड़ी दूर पर स्थित मकान,पेड़ और झाड़ियों का हल्का—हल्का आभास हो रहा है। अँधेरे की बाढ़ में अभी डूबे हुए हैं सब-के-सब मेरी घड़ी की बिल्ली की आँख—सी झपकती सुइयाँ भी,जो चार बजा रहीं हैं।

इस बाढ़ से सबसे पहले चहचहाते हुए कुछ परिन्दे निकले,फिर मकान,दुकान,झोंपड़े और पगडण्डियाँ...। मैं उगते सूरज की ललछौंह रोशनी में धो—धोकर एक-एक को परख रहा हूँ...यह हो शायद...शायद वह...या शायद वह हो....!

पर नहीं। एक भी नहीं!

तो....?

यहाँ कभी-कभी भटकने वाले एक पागल के सिवा कोई किसी 'बिजली साहब' को नहीं जानता,न ही किसी 'सुदीप्त' या 'सुदामा प्रसाद' को। बस-पड़ाव भी छोटा है और रेलवे स्टेशन भी स्टेशन न होकर एक हाल्ट मात्र। मैं जिस लोकल से यहाँ उतरा,उस जैसी इक्की-दुक्की उपेक्षित पैसेंजर गाड़ियों को छोड़कर  न कोई अच्छी

गाड़ी यहाँ रुकती है,न कोई सफेदपोश मुसाफिर। हाल्ट का नाम पंच पहाड़ है और क्षेत्र का भी ,मगर वास्तविक ‘पंच पहाड़’ हाल्ट के पश्चिम की ओर पाँच पहाड़ों से घिरा हुआ एक दैत्याकार काले गुब्बारे—सा उड़ रहा है।

इस गुब्बारे में सुराख बनाती हुई वन-विभाग की सड़क मुझे अन्दर दाखिला दिलाकर लौट चुकी है और जाते-जाते बादलों का किवाड़ भी बन्द करती गई है। अब मेरे चारों ओर पाँच पहाड़ों का घेरा है। पाँच पहाड़,जैसे पाँच पाण्डव अज्ञातवास के। बीच में फैली झील,पाँचों का प्रतिबिम्ब समोये हुए। पता नहीं सुदीप्त ने इस झील का क्या नामकरण किया होगा—कुन्ती या पांचाली। झील के किनारे दूर-दूर तक कुन्तलों की तरह छितराए दरख्त और झाड़ियाँ हैं और उनके साथ नगीने की तरह जड़े इक्के-दुक्के खपड़ैल। ज्यादा ऊँचाई तक नहीं है यह सिलसिला। देखकर लगता है जैसे खपड़ैलों और पेड़ों का क्रम पहाड़ों पर चढ़ते—चढ़ते थक गया है। बादलों के जमघट से ऊपर की चोटियों के आकार और ऊँचाइयाँ स्पष्ट नहीं हैं। शायद मुझे आया देखकर बादलों को जैसे-तैसे लपेट लिया है उन्होंने। देखते ही देखते दस बजे के सूरज को भी बादलों ने ढक लिया,जैसे डाकू,पुलिस या गुण्डे के आने पर माताएँ अपने बाहर खेल रहे बच्चों को छुपा लेती हैं। एक जोरदार कड़कड़ाहट होती है और बादलों पहाड़ों वीरानियों और झील से रिसता सुरमई सन्नाटा पुझ पर अरराकर टूटता है। मेरी सहमी नज़र एक बार फिर खपड़ैलों, पेड़ों और पहाड़ों की परिक्रमा करके थक जाती है। इस घिरते अँधेरे में जुगनू—सा पंख समेटे कहाँ छुपा है मेरा दोस्त?

सू—सू!स्याह नकाब से सिसकारती हुई यह कैसी आवाज़ है? अचानक मुझे दूर के पेड़ बिदके हुए मवेशियों—से मचलते नज़र आते हैं। तूफ़ान आएगा क्या? मैं असहाय भाव से पूरे परिवेश की भयावहता की थाह लेना चाहता हूँ। देखते-देखते तूफ़ान मेरे इर्द—गिर्द के पेड़ों को भी अपनी गिरफ्त में ले लेता है।

छरर! छरर! कंकरियों की बौछार! हवा पहाड़ों के घेरे के बीच हहास भरती हुई गोल-गोल चक्कर काटने लगती है और मैं खुद का सन्तुलन बनाता पहाड़ की ढलान से खपड़ैलों की ओर जाने वाली उलझी डोर जैसी राह पर नाट—सा चढ़ा जा रहा हूँ।